मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-11, अङ्क-12 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-17 (वि.नि.सं. 2538) दिसम्बर 2012

ऐसी दिवाली मनाऊँ

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूं फेर न दुखड़ा पाऊँ॥अबके॥

आन कुदेव कुरीति छाँड़ के, श्री महावीर चितारूँ।
राग-द्वेष का मैल जलाकर, उज्जल ज्योति जगाऊँ॥
अपनी मुक्ति-तिया हर्षाऊँ॥1॥अबके॥

निज अनुभूति महालक्ष्मी का, वास हृदय करवाऊँ।
निज गुण लाभ दोष टोटे का, लेखा ठीक लगाऊँ॥
जासों फेर ना टोटा पाऊँ॥2॥अबके॥

ज्ञान रतन के दीप में, तप का तेल पवित्र भराऊँ।
अनुभव ज्योति जगा के, मिथ्या अन्धकार बिनसाऊँ॥
जासों शिव की गैल निहारूँ॥3॥अबके॥

अष्ट करम का फोड़ फटाका, विजयी जिन कहलाऊँ।
शुद्ध बुद्ध सुखकंद मनोहर, शील स्वभाव लखाऊँ॥
जासों शिवगोरी बिलसाऊँ॥4॥अबके॥

प्रधान सम्पादक
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
ब्र. पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, मङ्गलायतन वि.वि.
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व विशेषाङ्क – 17

क्या / कहाँ

भगवान महावीर का....	3
बहिरात्मा के देहबुद्धिरूप.....	12
सत्मार्ग का प्रेरक ही....	23
दीपावली का मङ्गल सन्देश	30
समाचार-सार	31

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती जिनेन्द्रमाला
धर्मपत्नी स्व. श्री हेमचन्द जैन
हस्ते श्रीमती पूनम देवेन्द्र जैन
सर्राफा बाजार, जैन मन्दिर के सामने,
सहारनपुर (उ.प्र.)
एवं
श्री संघवी भबूतमल भण्डारी
301, पेक्शाल टॉवर, तीसरा माला
13, एस.के.आर. रोड,
बैंगलोर – 560002

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।
सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़।

महावीर निर्वाणोत्सव के पावन अवसर पर

भगवान महावीर का जीवन-दर्शन

आज वीर भगवान के निर्वाणकल्याणक का माङ्गलिक दिवस है। आज से चौबीस सौ सत्तर वर्ष पूर्व (वर्तमान में 2532 वर्ष पूर्व) इस भरतक्षेत्र में भगवान महावीर विराजमान थे। उन भगवान महावीर का जन्मकल्याणक चैत्र शुक्ल तेरस को हुआ था, उसके बहत्तर वर्ष बाद वे निर्वाण को प्राप्त हुए। आज उस निर्वाणकल्याणक का दिवस है।

महावीर भगवान भी, जैसे हम सब आत्मा हैं, वैसे आत्मा थे। वे भी पहले चार गतियों में भ्रमण कर रहे थे। उसमें से वे उन्नतिक्रम में चढ़ते-चढ़ते तीर्थङ्कर हुए। भगवान चार गति में थे, उन्हें सत्समागम से आत्मा का भान हुआ। जैसे चौंसठ पहरी पीपल को घिसते-घिसते वह चरपरी होती जाती है; उसी प्रकार आत्मा में परमानन्द भरा है, वह प्रयास द्वारा बाहर आता है। इसी प्रकार महावीर भगवान की आत्मा में परमानन्द भरा था, वह स्वयं अनुक्रम से प्रगट हुआ। मैं तो मन, वाणी, देह से पृथक् आनन्दमूर्ति तत्त्व हूँ, मेरा स्वभाव चेतना है। चेतना, अर्थात् जानना और देखना। उसमें जितने संयोगीभाव होते हैं, वे सब पर की अपेक्षा होते हैं। जब तक चैतन्य के शुद्धस्वभाव की दृष्टि नहीं होती, तब तक अन्दर से विकसित होकर स्वतन्त्रता प्रगट नहीं होती, अर्थात् मोक्षदशा प्रगट नहीं होती।

एक हजार काँच के टुकड़ों के बीच हीरा पड़ा हो तो वह हीरा संयोग में पड़ा हुआ है। जिसे उस हीरे की कीमत लगती है, वह संयोग में पड़े हुए उस हीरे की परीक्षा करके, हीरे को काँच से भिन्न कर लेता है। इसी प्रकार कर्म के संयोग के बीच अनादि से चैतन्यमूर्ति ज्ञानज्योति निराला हीरा / भगवान आत्मा पड़ा है। जिसे ऐसे चैतन्यस्वरूप को प्राप्त करना है, वह सत्समागम से चैतन्यमूर्ति आत्मा की पहचान करके, श्रद्धा करके, उसमें स्थित होकर मोक्षदशा प्रगट करता है। इस प्रकार चैतन्यमूर्ति हीरे को श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र द्वारा जुदा कर लेता है।

तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध

महावीर भगवान इस अन्तिम भव से पूर्व दशवें महाशुक्र स्वर्ग में थे और तत्पूर्व नन्दराजा के भव में उन्होंने आत्मा के भानसहित चारित्र का पालन किया था, नग्न दिगम्बर मुनि हुए थे। उस मुनिपने में स्वरूप की रमणता में रमते थे। अहा! उस भव में उन्होंने तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध किया था। एक पुण्य का रजकण अथवा एक शुभभाव का अंश उत्पन्न हो — ऐसा मेरा स्वरूप नहीं, वह मेरा कर्त्तव्य नहीं है — ऐसे भानपूर्वक वे स्वरूप में रमते थे।

उस दशा की भूमिका में उन्हें शुभविकल्प आता है कि अरे रे! जीवों को इस स्वरूप का भान नहीं है। स्वरूप-रमणता में से बाहर आने पर उन्हें ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ कि अहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव! उसे सभी जीव कैसे प्राप्त करें? सभी जीव ऐसा स्वभाव प्राप्त कर लें, ऐसा विकल्प आया, परन्तु वास्तविकरूप से तो उसका अर्थ यह है कि अहा! ऐसा मेरा चैतन्यस्वभाव पूरा कब हो? मैं पूरा कब होऊँ — ऐसी भावना का जोर है और बाहर से ऐसा विकल्प आता है कि अहा! ऐसा स्वभाव सभी जीव कैसे प्राप्त करें? उस उत्कृष्ट शुभभाव से तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध होता है।

जिस भाव से तीर्थङ्करप्रकृति बँधती है, वह भाव भी आत्मा को लाभ नहीं करता। वह शुभराग टूटेगा, तब भविष्य में केवलज्ञान होगा। उस तीर्थङ्कर पद में जो वाणी छूटेगी, उस वाणी के रजकण, स्वरूप के भान की भूमिका में बँधते हैं। यह राग मेरा कर्त्तव्य नहीं है — ऐसा उन्हें थान था और स्वरूप-रमणता थी, उस भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति बँध गयी।

राग को लाभरूप माननेवाली भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता, परन्तु राग मुझे लाभरूप नहीं है, मैं राग का कर्ता नहीं हूँ — ऐसे भानवाली भूमिका में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध होता है।

महावीर भगवान ने नन्दराजा के भव में ऐसी वाणी का बन्धन किया कि भविष्य में पात्र जीवों को लाभ दें, अर्थात् भव-पार होने का निमित्त बनें। अन्य जीवों को तिरने का सर्वोत्कृष्ट निमित्त बनें — ऐसी तीर्थङ्करप्रकृति

का बन्ध किया और जब तीर्थङ्करदेव के भव में दिव्यध्वनि छूटती है, तब अनेक जीवों को तिरने में वह वाणी निमित्त होती है।

गर्भ से छह माह पूर्व एवं गर्भ में सवा नौ माह

भगवान महावीर के जीव ने नन्दराजा के भव में चारित्र का पालन किया और तत्पश्चात् अनुक्रम से आयु पूर्ण करके वहाँ से दशवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहाँ दशवें स्वर्ग में जब देवरूप से भगवान की आयु छह माह शेष रहती है, तब वहाँ अन्य देवों को भी पता लग जाता है कि यह जीव छह माह पश्चात् भरतक्षेत्र में महारानी त्रिशला के गर्भ से चौबीसवें तीर्थङ्कर के रूप में जन्म लेगा। इसलिए वे देव, छह माह पूर्व से ही माता के समीप आकर माता की सेवा करते हैं।

वे देव, माता के समीप आकर कहते हैं कि हे रत्नकूखधारिणी माता! आप धन्य हैं!! आपके गर्भ में छह महीने पश्चात् जगत के तारणहार, बहुत जीवों का उद्धार करनेवाले त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्कर आनेवाले हैं। छह माह पहले देव, माता-पिता के घर रत्नवृष्टि करते हैं। यहाँ उन रत्नों की कीमत नहीं है, क्योंकि रत्न तो धूल हैं।

जहाँ अनाज पकता है तो उसके साथ घास तो होता ही है। यद्यपि उस घास की कीमत नहीं है, अनाज की ही कीमत है। किसान भी घास के लिए खेत नहीं बोता, अनाज के लिए बोता है। इसी प्रकार जहाँ मोक्षमार्गरूप अनाज पकता है, वहाँ उसके साथ शुभपरिणाम से तीर्थङ्कर पद, चक्रवर्ती पद इत्यादि घास तो सहज पकती है। घास की इच्छा से घास नहीं पकती, अपितु सहज पकती है।

जिसे पूर्ण परमानन्द प्रगट हो गया है — ऐसे परमात्मा पुन: अवतार नहीं लेते, परन्तु जगत् के जीवों में से एक जीव उन्नति क्रम में बढ़ते-बढ़ते जगत गुरु तीर्थङ्कर होता है। जब जगत के जीवों की ऐसी उत्कृष्ट योग्यता तैयार होती है, तब ऐसा उत्कृष्ट निमित्त भी तैयार होता है।

महाराजा सिद्धार्थ के घर महारानी त्रिशला के गर्भ से जन्म

भगवान महावीर गर्भ में आने के पश्चात् अनुक्रम से सवा नौ महीने

में उनका जन्म होता है। सौधर्म इन्द्रादि देव आकर भगवान का जन्म-महोत्सव मनाते हैं। सौधर्म इन्द्र के साथ उनकी शची इन्द्राणी भी आती है और माता के पास जाकर कहती है कि हे रत्नकूखधारी माता! तीन लोक के नाथ को जन्म देनेवाली जनेता!! तुम्हें धन्य है! ऐसा कहकर भगवान को लेकर सौधर्म इन्द्र को देती है। सौधर्म इन्द्र भी भगवान को एक हजार नेत्र बनाकर निरखता है। भगवान को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक कराता है। इस प्रकार इन्द्र, परमभक्तिपूर्वक भगवान का जन्मकल्याणक महोत्सव करता है। इसका वर्णन शास्त्रों में बहुत आता है।

तीस वर्ष की उम्र में दीक्षा

जन्म होने के पश्चात् भगवान महावीर तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे, तत्पश्चात् स्वयं दीक्षित हुए। देव आकर दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। प्रभु स्वयं दीक्षित होकर बारह वर्ष की स्वरूप-रमणता करते हुए विचरते हैं। इच्छा निरोधरूप स्वरूप-रमणता में उनका काल व्यतीत होता है।

बयालीस वर्ष की उम्र में केवलज्ञान

तत्पश्चात् वैशाख शुक्ल दशम के दिन श्री महावीर भगवान को केवलज्ञान होता है। वे केवलज्ञान में तीन काल, तीन लोक को स्पष्ट जानते हैं। स्व-परपदार्थों के अनन्त भाव केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं। तीर्थङ्करदेव को केवलज्ञान होने पर तुरन्त ही दिव्यध्वनि खिरती है; अन्य सामान्य केवली के लिए यह नियम नहीं है परन्तु तीर्थङ्कर भगवान के तो नियमरूप से दिव्यध्वनि छूटती है।

छयासठ दिन तक दिव्यध्वनि का विरह

भगवान महावीर को केवलज्ञान हुआ, समवसरण की रचना हुई, बारह सभाएँ भर गयीं, तथापि दिव्यध्वनि नहीं छूटी। इन्द्र को विचार आया कि भगवान की दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरती। इन्द्र ने अवधिज्ञान का उपयोग करके देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि सभा में उत्कृष्ट पात्र जीव, अर्थात् गणधर नहीं हैं। इस सभा के पात्र होने योग्य गौतम हैं — ऐसा ज्ञात होने पर इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप बनाया और गौतम के पास गये।

गौतम चार वेद में प्रवीण थे, उन्हें चर्चा का बहुत शौक था, इसलिए श्री गौतमस्वामी, भगवान महावीर के पास आने के लिए तैयार हुए। ज्यों ही गौतमस्वामी मानस्तम्भ के समीप आये, उनका मान गल गया। वीरप्रभु के दर्शन करके उन्होंने धर्म प्राप्त किया और मुनिपना अङ्गीकार कर लिया। भगवान की वाणी झेल सकें — ऐसे उत्कृष्ट पात्र गौतमस्वामी के आने से भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी। गौतमस्वामी चार ज्ञान के धारी और गणधर हो गये।

भगवान महावीर को केवलज्ञान होने के पश्चात् छयासठ दिन के बाद दिव्यध्वनि खिरी, अर्थात् श्रावण कृष्ण एकम् के दिन भगवान की दिव्यध्वनि खिरी; इसीलिए श्रावण कृष्ण एकम् वीर-शासन-जयन्ती का दिन कहलाता है, अर्थात् शास्त्र प्ररूपणा का दिन कहलाता है। केवलज्ञान में अनन्त भाव ज्ञात होते हैं, इसलिए उनकी दिव्यध्वनि में भी अनन्त रहस्य आते हैं। ज्ञान में भाव पूरा है, इसलिए वाणी में भी पूरा आता है।

केवलज्ञान होने के पश्चात् किसी तीर्थङ्कर की आयु दीर्घ होती है और किसी की अल्प। भगवान महावीर की आये बहत्तर वर्ष थी। अभी महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान चैतन्यमूर्ति परमात्मा समवसरण में इन्द्रों और गणधर आदि की बारह सभा में विराजमान हैं। उनकी आयु 84 लाख पूर्व की है, जीवन्मुक्तरूप से तेरहवें गुणस्थान में श्री सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में विराज रहे हैं, उनकी आयु लम्बी है।

श्री भगवान महावीर परमात्मा ने केवलज्ञान प्रगट किया, इसलिए चार घातिकर्मों का नाश हुआ। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अनतराय — इन चार घातिकर्मों का नाश हुआ। इस प्रकार उन्होंने केवलज्ञानरूप से जीवन्मुक्तदशा में तेरहवें गुणस्थान में तीस वर्ष तक विचरण किया। तत्पश्चात् चार अघातिकर्म, अर्थात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र — ये चार कर्म पावापुरी के बाहर उद्यान में नाश किये।

बहत्तर वर्ष की उम्र में मोक्ष

पावापुरी के बाहर उद्यान में भगवान आज निर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान को केवलज्ञान तो तीस वर्ष पहले हो गया था और निर्वाण आज दीपावली के दिन हुआ। इस प्रकार जीवन्मुक्त भगवान, देहमुक्त हुए और चैतन्य का ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से सिद्धक्षेत्र में जा विराजे। यद्यपि आनन्ददशा / पूर्णानन्द / मुक्तदशा तो यहीं प्रगट हुई थी, परन्तु प्रदेशों का कम्पन मिट जाने से अकम्प होकर देह छूट जाने पर भगवान महावीर आज देहमुक्त हुए हैं।

पावापुरी का जो क्षेत्र है, वहाँ से समश्रेणी में ऊपर सिद्धक्षेत्र में भगवान महावीर परमात्मा विराजमान हैं। आत्मा, देह से अत्यन्त छूट गया, इसका नाम मुक्ति है। अपना ज्ञान-आनन्दमूर्ति स्वभाव रह जाना और सब छूट जाना, इसका नाम मुक्ति है। भगवान, कार्मणशरीर से छूटकर मोक्ष पधारे। आज भगवान महावीर का विरह होने से भक्तों को प्रशस्तराग के कारण अश्रुधारा बहने लगी और वे कहते हैं कि 'अरे! भरत का सूर्य अस्त हो गया, परन्तु भगवान महावीर का आत्मा मुक्त हुआ; इसलिए उनका निर्वाणकल्याणक महोत्सव भी मनाते हैं।'

दीपावली के दिन का महत्त्व

भगवान मोक्ष पधारे, तब पावापुरी में इन्द्र और देवों ने आकर महोत्सव किया। पावापुरी में दीपक इत्यादि से माङ्गलिक महोत्सव किया गया, इसलिए आज के दिन को दीपोत्सव या दीपावली कहते हैं।

आजकाल लोग बहीखाता इत्यादि की पूजन करके संसार के लिए दीपावली मनाते हैं, परन्तु वस्तुत: तो आज का दिन आत्मा के पूर्णानन्द स्वभाव को प्रगट करने की भावना का है। जैसा भगवान का आत्मा है, वैसा ही मेरा आत्मा है। ऐसा विचार कर स्वभाव का भान करके विभावपरिणाम को स्वरूप-स्थिरता के द्वारा तोड़ने का पुरुषार्थ प्रगट करने के लिए आज का दिन है।

जगत के जीव मरते हैं, तब शोक होता है और भगवान की मुक्ति का महोत्सव होता है क्योंकि वह मरण नहीं, अपितु जीवन है;

सहजानन्दस्वरूप में विराजमान रहनेवाला आत्मा का जीवन है; इसलिए उसके महोत्सव होते हैं। पूर्णानन्द या सहजानन्द में रहना, इसी का नाम मुक्ति है।

श्री महावीर परमात्मा ने वाणी द्वारा जो वस्तुस्वरूप बताया, उसे गणधरों ने झेला और वह वाणी आचार्य-परम्परा से अभी तक चली आ रही है। इस भरतक्षेत्र में परम गुरुदेव कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र की स्थापना करके, श्रुत की प्रतिष्ठा करके अपूर्व उपकार किया है। लोगों को वह यथातथ्य बात समझना कठिन पड़ती है। श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह समयसार शास्त्र तो सर्वोत्कृष्ट योगपूर्वक (वचनयोग से) समझाया है, इस शास्त्र में केवलज्ञान भरा है।

आज के दिन की हमारे लिए सार्थकता

लोग कहेंगे कि ये तो 'छोटा मुँह बड़ी बात' है, परन्तु भाई! चाहे बालक अग्नि को स्पर्श करे या बड़ा अग्नि को स्पर्श करे, परन्तु उन दोनों को उष्णता के अनुभव में कोई अन्तर नहीं है। अग्नि का स्वभाव, छह माह के बालक ने जो जाना, वही स्वभाव पण्डित, वकील और वैज्ञानिकों ने जाना है। दोनों ये जानते हैं कि अग्नि को स्पर्श करने से ताप लगता है, उस अग्नि की उष्णता के सम्बन्ध में दोनों के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है।

जिस प्रकार बालक भी उष्णता लगने से पुनः अग्नि को स्पर्श करने नहीं जाता; इसी प्रकार बड़े भी अग्नि को स्पर्श करने नहीं जाते। बड़े विशेष कथन करते हैं कि अग्नि प्रकाशवाली है, अग्नि उष्ण है आदि और बालक विशेष कथन नहीं कर सकता। इस प्रकार कथन में अन्तर भले ही पड़ता है परन्तु बालक के अनुभव में और बड़े के अनुभव में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इसी प्रकार त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्करदेव तीन लोक-तीन काल के विज्ञान के पण्डित हैं। उन्होंने जैसा वस्तु का स्वरूप जाना है, वैसा ही अविरति बालक भी जानता है। वस्तु का स्वरूप जैसा केवलज्ञानी ने जाना है, वैसा ही अविरति बालक ने भी जाना है। केवली और चौथे गुणस्थान की प्रतीति में कोई अन्तर नहीं है। जैसी स्वभाव की प्रतीति केवलज्ञानी को है, वैसी

ही प्रतीति चौथे गुणस्थानवाले, गृहस्थाश्रम में राज्य करनेवाले अथवा युद्ध में खड़े अविरत समकिती की भी होती है। स्वभाव की प्रतीति में दोनों में अन्तर नहीं है।

एक भी राग का अंश मेरा स्वरूप नहीं है — ऐसी प्रतीति चौथे गुणस्थानवाले समकिती को होने पर भी, वह दया, दान, पूजा, भक्ति इत्यादि में जुड़ता अवश्य है और शुभभाव में जुड़ने पर भी उस अविरति समकिती, केवलज्ञानी और सिद्ध की स्वभाव की प्रतीति एक समान ही है, उस प्रतीति में किञ्चित् भी अन्तर नहीं है, परन्तु ज्ञान और चारित्र में अन्तर है।

निचली दशावाला वीतराग नहीं है, इसलिए उसे राग आता है क्योंकि राग तो निचली भूमिका में ही होता है न! वीतराग को राग कहाँ आता है? चौथे गुणस्थान में पुण्य-पापभाव होते अवश्य हैं, परन्तु वे समझते हैं कि यद्यपि मेरे पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण ये भाव हुए हैं, तथापि ये मेरा स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव नहीं माना, इसलिए उन शुभभावों को अपना कर्त्तव्य नहीं माना; अपने स्वरूप में स्थिर हो जाना ही उसने अपना कर्त्तव्य तो माना है; इसलिए उसका पुरुषार्थ भी उसी जाति का होता है और जब-जब वह अविरत सम्यग्दृष्टि, स्वरूप में स्थिर होता है, तब वह सिद्ध जैसा आंशिक अनुभव करता है।

पञ्चम काल के अन्त तक धर्म की अविरलधारा

भगवान महावीर समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा कह गये हैं कि पञ्चम काल के अन्त तक एकावतारी जीव होनेवाले हैं। केवलज्ञानी परमात्मा को जैसी स्वभाव की प्रकृति है, वैसी ही प्रकृति चौथे गुणस्थानवाले को होती है। जैसा एकावतारीपना पञ्चम काल के प्रारम्भ में चौदह पूर्व के धारी मुनियों को था, वैसा ही एकावतारीपना पञ्चम काल के अन्त तक के जीवों को भी होगा। वे जीव भी आत्मा का भान करके, स्थिरता के जोर की भावना से एक भव में मुक्ति लेंगे।

इस प्रकार दोनों के मुक्ति के फल में कुछ अन्तर नहीं है। शुरुआत और अन्तिम दोनों समान हो गये। ज्ञान की न्यूनाधिकता है, तथापि मुक्ति

के फल में कोई अन्तर नहीं है। श्रद्धा और मुक्ति के फल, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। इक्कीस हजार वर्ष तक लाखों -करोड़ों जीवों में कोई-कोई जीव आत्मभान करके इस शासन में एकावतारी हुआ करेंगे — ऐसा भगवान महावीर कह गये हैं।

समकिती और केवलज्ञानी, दोनों श्रद्धा अपेक्षा से समान हैं। प्रभु के पश्चात् हुए सन्त-मुनि तथा पञ्चम काल के अन्त तक के समकिती जीव भी एकावतारीपना पावें, उस मुक्ति के फल में दोनों समान हैं। भगवान महावीर आज मोक्ष पधारे, तब से भगवान की वाणी परम्परा से अविरल चली आ रही है।

एक-एक मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका पञ्चम काल के अन्त में भी आत्मा का भान करके, एकावतारीपना प्राप्त करेंगे, तो फिर अभी क्यों नहीं हो सकता? छोटी-सी बालिका भी आत्मभान कर सकती है। सबका आत्मा तीन लोक का नाथ है, इसमें कोई अन्तर नहीं है। शरीर में अन्तर है, परन्तु वह बालिका भी पर से भिन्न आत्मस्वरूप की श्रद्धा कर सकती है। पञ्चम काल के अन्त तक आत्मभान कर सकती है तो अभी तो अवश्य किया जा सकता है।

अभी आत्मभान तो किया जा सकता है, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि स्वयं ने पूर्व में उलटा पुरुषार्थ किया है, अब उसे सुलटा करने में अनन्त पुरुषार्थ चाहिए, और उतना पुरुषार्थ स्वयं नहीं कर सकता; इसलिए अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हो सकती। इसमें स्वयं के पुरुषार्थ की कमजोरी ही कारण है।

यह जो भगवान महावीर की बात कही जा रही है, वैसे स्वरूप को जो प्रगट करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। जैसा भगवान महावीर के आत्मा का स्वरूप है, वैसा ही समस्त आत्माओं का स्वरूप है। आज भगवान महावीर के गीत गाये, वे अपने स्वरूप को प्रगट करने के लिए हैं। वैसे स्वरूप को समझे तो अभी भी एकावतारीपना प्रगट किया जा सकता है।

[आत्मधर्म (गुजराती) कार्तिक, वी.नि.सं. 2470, अक्टूबर 1944, वर्ष 7, अङ्क 73, पृष्ठ 10-14]

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व : जीवतत्त्व गताङ्क से आगे...

समाधितन्त्र ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

बहिरात्मा के देहबुद्धिरूप अविद्या के संस्कार

अज्ञानी तो अपने शरीर को आत्मा मानता है और दूसरे में भी शरीर को ही आत्मारूप से देखता है परन्तु शरीर से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को वह जानता नहीं है। आत्मा तो सदा ज्ञान-आनन्दस्वरूप ही है, ऐसे अपने अन्तरवेदन से ही वह ज्ञात होता है। आत्मा स्वयं अनन्त ज्ञान-आनन्दस्वरूप परिणमित हुआ, तत्पश्चात् अचलरूप से स्थिर रहता है, उसमें से कभी च्युत नहीं होता; इसलिए ऐसे ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा को जानना और देह में आत्मबुद्धि छोड़ना।

मूढ़ बहिरात्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्मा को नहीं जानता; वह इन्द्रियज्ञान से मात्र शरीर को ही जानता है और उसे ही आत्मा मानता है। यह शरीर, वही मैं हूँ, शरीर की बोलने-चलने की चेष्टाएँ, वे सब मेरे आत्मा की चेष्टा है - ऐसा अज्ञानी मानता है और दूसरों में भी दूसरों के शरीर को ही आत्मा मानता है तथा उस आत्मा से अधिष्ठित ऐसे अचेतन शरीर की चेष्टाओं को आत्मा की ही चेष्टा मानता है परन्तु देह तो चेतनारहित है और आत्मा चेतनासहित है, उसे अज्ञानी नहीं जानता, यह बात अब दसवीं गाथा में कहते हैं—

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥१०॥

अतीन्द्रियज्ञान द्वारा चैतन्यस्वरूप आत्मा को तो जाना नहीं और इन्द्रियज्ञान द्वारा मात्र अचेतन शरीर को ही जाना, वहाँ अज्ञानी को 'शरीर ही मैं हूँ' - ऐसी देहबुद्धि हो गयी और जैसे अपने में शरीर को आत्मा मानता है, वैसे दूसरे के अचेतन शरीर को देखकर उसे भी वह दूसरे का आत्मा ही मानता है। इस प्रकार मूढ़ जीव, अपने में और पर में अचेतन शरीर को ही आत्मा मानता है; देह से भिन्न आत्मा को वह नहीं देखता।

जो देह को ही आत्मा मानकर मूर्च्छित हो गया है, उसे असमाधि है। यहाँ समाधि का उपाय बतलाते हैं। देहादिक से भिन्न मेरा आत्मा, ज्ञान

आनन्दस्वरूप ही त्रिकाल है – ऐसा श्रद्धा–ज्ञान करना तथा उसमें एकाग्रता करना, वह समाधि है। ज्ञानी तो जानता है कि मैं चैतन्यस्वरूप अरूपी हूँ और सभी आत्माएँ भी ऐसी ही चैतन्यस्वरूप अरूपी हैं। यह शरीर दिखता है, वह तो रूपी, जड़–अचेतन है, वह मैं नहीं हूँ और दूसरे शरीर दिखते हैं, वे भी आत्मा नहीं हैं; दूसरे आत्मा तो शरीर से भिन्न हैं। अज्ञानी तो अपने आत्मा को भी शरीररूप ही देखता है। शरीर, वह मैं ही हूँ – ऐसा मानता है और दूसरे आत्माओं को भी वह इसी प्रकार शरीररूप ही देखता है।

शरीर, जड़ और आत्मा, चेतन है – ऐसा तो बोले परन्तु फिर ऐसा माने कि शरीर की क्रिया आत्मा करता है, शरीर की क्रिया से आत्मा को लाभ–नुकसान होता है – तो वह भी शरीर को आत्मा ही मानता है; शरीर से भिन्न आत्मा को वास्तव में वह नहीं मानता और उसे समाधि नहीं होती। देह ही मैं हूँ – ऐसे देह को ही जिसने आत्मा माना है, उसे देह छूटने पर समाधि कैसे रहेगी? नजर तो देह के ऊपर ही पड़ी है, इसलिए उसे देह छूटने के अवसर में समाधि नहीं रहेगी। ज्ञानी तो अपने आत्मा को देह से भिन्न ही जानता है। चेतनस्वरूप ही मैं हूँ, शरीर मैं नहीं – ऐसा उसे भान है; इसलिए देह छूटने के अवसर पर भी अशरीरी चैतन्य के लक्ष्य से उसे समाधि ही रहती है। इसलिए भेदज्ञान करके अन्तर में स्वसंवेदन से चिदानन्दस्वरूप अपने आत्मा को जानना, वही समाधि का उपाय है।

जिसने चैतन्यस्वरूप आत्मा को नहीं जाना और शरीर को ही आत्मा माना, उसकी नजर अन्तर में चैतन्य पर नहीं गयी परन्तु बाहर में नजर फैली है। इसलिए पर में दूसरे के आत्मा को भी देह से भिन्न न जानकर शरीररूप ही मानता है तथा बाहर में स्त्री–पुत्र–धन इत्यादि को भी अपने हितरूप जानकर भ्रम से वर्तता है – ऐसा अब कहते हैं–

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः ॥11॥

अपने में तथा पर में देह को ही जो आत्मा मानता है और देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को तो जानता नहीं, उस मूढ़ जीव की विपरीतदृष्टि

बाहर में ही फैलती है, अर्थात् विभ्रम से वह ऐसा मानता है कि यह मेरी स्त्री, यह मेरा पुत्र - इत्यादि।

अज्ञानी मूढ़ जीव, आत्मा का अजान, स्वयं के और पर के शरीर को ही आत्मा मानकर भ्रम से वर्तता है; इसलिए दूसरे को भी वह शरीर से ही पहचानता है। सर्वज्ञ भगवान को, मुनियों को, सन्त इत्यादि सभी को उसी प्रकार बाह्यदृष्टि से शरीररूप ही देखता है परन्तु शरीर से भिन्न अन्दर की चैतन्यपरिणतिवाला आत्मा है, उसे वह नहीं पहचानता। अज्ञानी, शरीर को ही देखता है परन्तु आत्मा क्या है, आत्मा के ज्ञानादि भाव क्या है ? - उन्हें वह नहीं पहचानता। जड़कर्म के कारण आत्मा को विकार होता है - ऐसा माननेवाला भी वास्तव में आत्मा को जड़ से भिन्न नहीं पहचानता। अपने आत्मा को ज्ञानानन्दस्वरूप से जाने बिना, दूसरे के आत्मा की भी वास्तविक पहचान नहीं होती।

शरीर की क्रिया मुझसे होती है - ऐसा जो मानता है, वह शरीर को ही आत्मा मानता है और आत्मा को जड़ मानता है। आत्मा का लक्षण तो ज्ञान है - ऐसा वह नहीं जानता है।

ज्ञान लक्षणी आत्मा है और शरीर तो जड़ परमाणु से लक्षित है। शरीर में प्रतिक्षण अनन्त परमाणु आते हैं और जाते हैं परन्तु उससे कहीं आत्मा में एक भी प्रदेश घटता या बढ़ता नहीं है। पुद्गल के पिण्ड से चैतन्यपिण्ड अत्यन्त भिन्न है; इस प्रकार जो नहीं जानता, वह बहिरात्मा अपने में आत्मा को शरीररूप ही मानता है और दूसरे में भी उसके शरीर को देखकर उसे ही आत्मा मानता है। 'यह ज्ञानी, बोलते हैं-खाते हैं-चलते हैं-हँसते हैं' इस प्रकार अज्ञानी, देह की चेष्टा को ही आत्मारूप से देखता है और उससे ज्ञानी को पहिचानता है परन्तु ज्ञानी का आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है; देह से पार है और राग का भी वह कर्ता नहीं है; वह तो आनन्द और ज्ञानरूप परिणमता है - ऐसा पहचाने तो ही ज्ञानी की सच्ची पहचान होती है परन्तु इसे तो अज्ञानी पहचानता नहीं, वह तो शरीर की चेष्टा को ही देखता है। अपने आत्मा को नहीं देखनेवाला अन्ध, दूसरे के आत्मा को भी कहाँ से देख सकेगा ?

शरीर का नाश या उत्पत्ति होने पर, मानो कि जीव ही नाश को प्राप्त

हुआ और जीव उत्पन्न हुआ – ऐसा अज्ञानी मानता है, क्योंकि उसने शरीर को ही आत्मा माना है। अपने में भी शरीर छूटने पर मेरा नाश हो जायेगा – मैं मर जाऊँगा – ऐसा मानता है; इसलिए उसे मृत्यु का भय सदा ही रहा करता है परन्तु मैं तो ज्ञानस्वरूप असंयोगी हूँ; शरीर जड़ है, उसके संयोग-वियोग से मेरी उत्पत्ति या नाश नहीं है – ऐसा अज्ञानी नहीं जानता है तथा शरीर को ही आत्मा माना, इसलिए शरीर को पोषण करनेवाले पाँच इन्द्रिय के विषय-भोगों को वह सुखकारी मानता है; इसलिए बाह्य विषयों से वह हटता नहीं और चैतन्यसुख को जानता नहीं; विषयों के रस के कारण, चैतन्य के आनन्दरस को चूक जाता है और बाह्य में प्रतिकूलता आवे-रोगादि हों, वहाँ स्वयं को दु:खी मानता है। इस प्रकार अकेले बाह्य संयोग से ही अपने को सुखी-दु:खी मानकर, उसमें ही राग-द्वेष-मोह से प्रवर्तता रहता है, अन्तर्मुख नहीं झुकता – ऐसा बहिरात्मा है।

वस्तुत: कोई भी संयोग — स्त्री-पुत्र आदि आत्मा के उपकारी नहीं, वे आत्मीय वस्तु नहीं, तथापि मोह के कारण बहिरात्मा उन्हें आत्मीय मानकर उपकारी मानता है। जहाँ अनुकूल संयोग मिले, वहाँ उसमें ही सुख मानकर सन्तुष्ट हो जाता है – राग में लवलीन हो जाता है और जहाँ उनका वियोग हो तथा प्रतिकूलता आवे, वहाँ महासंताप करता है – शोक में तल्लीन हो जाता है परन्तु राग-द्वेष के चक्कर से छूटकर चैतन्य की शान्ति में नहीं आता है। देह के संयोग से भिन्न मेरा चैतन्यतत्त्व है – यदि ऐसा पहचाने तो समस्त संयोग में से राग-द्वेष का अभिप्राय छूट जाये और चैतन्य की अपूर्व शान्ति हो जाये।

ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के अतिरिक्त पुण्य-पाप से या बाह्य संयोग से जो अपने को ठीक मानता है, वह बहिरात्मा है, वह बाहर में ही अपना अस्तित्व मानता है; अपने चैतन्य के भिन्न अस्तित्व को वह नहीं जानता है। देह, वही मैं हूँ और देह के सम्बन्धी, वे सभी मेरे सम्बन्धी – ऐसा दृढ़ अभिप्राय अज्ञानी को घूँट गया है। इसलिए पर के साथ का सम्बन्ध तोड़कर अपने स्वभाव के साथ सम्बन्ध नहीं करता है, अर्थात् सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान नहीं करता है, इसलिए उसे समाधि नहीं होती है।

मैं शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप ही हूँ; इसके सिवाय अन्य सभी मुझसे बहिरभाव हैं, वे मैं नहीं – ऐसा भेदज्ञान करनेवाला ज्ञानी, अन्तरात्मा है। बाह्य चीज को वह स्वप्न में भी अपनी नहीं मानता, इसलिए चैतन्य को चूककर बाह्य चीज में एकत्वबुद्धि से राग-द्वेष उसे नहीं होते हैं। अज्ञानी तो आत्मा को देहादि बाह्य स्वरूप ही मानता है और इन्द्रियों तथा बाह्य विषयों को वह हितरूप मानता है, इसलिए बाह्य पदार्थों की प्रीति छोड़कर चैतन्य की ओर कैसे झुकेगा? जिसे हितरूप माने, उसका प्रेम कैसे छोड़े? ज्ञानी कभी चैतन्य का प्रेम नहीं छोड़ता और अज्ञानी बाह्य विषयों का प्रेम नहीं छोड़ता। जिसने अन्तर के चैतन्यस्वभाव को ही सुखरूप जाना है, वह अन्तरात्मा है और जो बाह्य विषयों में सुख मानता है, वह बहिरात्मा है – ऐसा जानकर, बहिरात्मपना छोड़कर, अन्तरात्मा होने के लिये यह उपदेश है।

यह आत्मा तो चैतन्यस्वभावी सूर्य है। देह से भिन्न है, उसे न जानकर, शरीर ही आत्मा है – ऐसा अज्ञानी को विभ्रम हो गया है। उस विभ्रम के कारण क्या होता है – यह कहते हैं।

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते ॥12॥

देह ही मैं हूँ – ऐसे विभ्रम के कारण उस बहिरात्मा को अविद्या के संस्कार रह जाते हैं और इसीलिए जहाँ-जहाँ जाये, वहाँ-वहाँ सर्वत्र अपने को शरीररूप ही मानता है। अविद्या के संस्कार किसी पर के कारण या कर्म के कारण होते हैं – ऐसा नहीं परन्तु अपनी विभ्रमबुद्धि के कारण ही अविद्या के संस्कार हैं। चिदानन्दस्वरूप को न जाना और देह को ही आत्मा माना, वह जीव भले चाहे जितने शास्त्र पढ़े और चाहे जितनी विद्या पढ़ा हो तो भी उसे अविद्या ही है। जहाँ चैतन्य और जड़ का भेदविज्ञान नहीं किया, वहाँ अविद्या ही है और भले ही शास्त्र न पढ़ा हो; अरे! तिर्यंच हो तो भी यदि अन्तर में चैतन्यस्वरूप अपने को देह से भिन्न जानता है तो वह सम्यक् विद्यावाला है। उसे अनादि के अविद्या के संस्कार छूट गये हैं... वह अन्तरात्मा है... धर्मात्मा है... मोक्ष का पन्थी है।

देखो! मोक्षशास्त्र पर सर्वार्थसिद्धि जैसी महान टीका रचनेवाले श्री

पूज्यपादस्वामी यहाँ स्पष्ट करते हैं कि विभ्रम के कारण ही आत्मा को अविद्या के संस्कार दृढ़ हुए हैं; कर्म के कारण या पर के कारण अविद्या हुई – ऐसा नहीं है। कर्म, आत्मा को विकार कराता है – ऐसा माननेवाला भी जड़ को ही आत्मा मानता है, अर्थात् शरीर को ही आत्मा मानता है।

अज्ञानी को विपरीत मान्यता से 'शरीर ही मैं हूँ' – ऐसे विभ्रम के कारण अविद्या के दृढ़ संस्कार ऐसे हो जाते हैं कि दूसरे जन्म में भी जहाँ जाये, वहाँ शरीर में ही आत्मबुद्धि करता है। मनुष्य शरीर मिला तब 'मैं ही मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच नहीं' ऐसा मानता है परन्तु जहाँ तिर्यंच शरीर मिला, वहाँ अविद्या के संस्कार के कारण ऐसा मानता है कि मैं ही तिर्यंच हूँ। इस प्रकार जिस-जिस शरीर का संयोग मिला, उस-उस शरीर को ही अपना स्वरूप मानता है परन्तु मैं तो अनादि, अनन्त शाश्वत् चैतन्यमूर्ति हूँ; मैं शरीररूप कभी हुआ ही नहीं – ऐसा अज्ञानी नहीं जानता है। शरीर को ही जीव मानता है, इसलिए शरीर छूटने पर मानो जीव ही मर गया – ऐसा अज्ञानी को भ्रम होता है। अज्ञानी को अविद्या के संस्कार हैं, वे अपने भ्रम के कारण ही हैं; किसी कर्म के कारण या दूसरे के कारण नहीं।

यहाँ तो यह बतलाना है कि अरे भाई! भ्रम से देह को ही आत्मा मानकर तू अभी तक अनन्त जन्म-मरण में भटका है। अब देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर वह भ्रमबुद्धि छोड़... बहिरात्मदशा छोड़ और अन्तरात्मा हो।

देह को आत्मा माननेवाला जीव, भ्रान्ति से कैसा दुःखी होता है, उसका दृष्टान्त—

एक मनुष्य नींद में सो रहा था, उसे स्वप्न आया कि 'मैं मर गया हूँ' इस प्रकार अपना मरण देखकर वह जीव बहुत दुःखी और भयभीत हुआ।

किसी सज्जन ने उसे जगाया; जागते ही उसने देखा कि अरे! मैं तो जीवित ही यह रहा; मैं कहीं मर नहीं गया। स्वप्न में अपने को मरा हुआ माना, इसलिए मैं बहुत दुःखी हुआ परन्तु वास्तव में मैं जीवित हूँ। इस प्रकार अपने को जीवित जानकर वह आनन्दित हुआ और मृत्यु सम्बन्धी

उसका दु:ख मिट गया। अरे! यदि वह मर गया होता तो 'मैं मर गया' ऐसा जाना किसने? जाननेवाला तो जीवित ही है!

इसी प्रकार मोहनिंद्रा में सोया हुआ जीव, देहादि के संयोग-वियोग से स्वप्न की तरह ऐसा मानता है कि मैं मरा, मैं जन्मा, मैं मनुष्य हो गया, मैं तिर्यंच हो गया; इस मान्यता के कारण वह बहुत दु:खी होता है परन्तु ज्ञानी ने जड़-चेतन की भिन्नता बतलाकर उसे जगाया; जागते ही उसे भान हुआ कि अरे! मैं तो अविनाशी चेतन हूँ और यह शरीर जड़ है, यह कहीं मैं नहीं हूँ। शरीर के संयोग-वियोग से मेरा जन्म-मरण नहीं - ऐसा भान होते ही उसका दु:ख दूर हुआ और वह आनन्दित हुआ कि वाह! जन्म-मरण मुझमें नहीं; मैं तो सदा जीवन्त चैतन्यमय हूँ। मैं मनुष्य या मैं तिर्यंच हो नहीं गया, मैं तो शरीर से भिन्न चैतन्य ही रहा हूँ। यदि मैं शरीर से भिन्न न होऊँ तो शरीर छूटने पर मैं कैसे जी सकूँगा? मैं तो जाननहार स्वरूप से सदा ही जीवन्त हूँ।

जैसे स्वप्न में अपने को मरा हुआ माना परन्तु जागृत होने पर तो जीवित ही है; इसी प्रकार अज्ञानदशा में अपने को देहरूप माना, वह ज्ञानदशा में भिन्न ही अनुभव करता है।

स्वप्न में मृत्यु की तरह स्वप्न में कोई दरिद्री जीव अपने को सुखी या राजा माने परन्तु जहाँ जागृत हुआ तो पता पड़ा कि वह सुख सच्चा नहीं था। इसी प्रकार मोहनिद्रा में सोया हुआ जीव, बाह्य संयोगों में-पुण्य में-राग में जो सुख मानता है, वह तो स्वप्न के सुख समान है। जहाँ भेदज्ञान करके जागृत हुआ, वहाँ भान हुआ कि अरे! बाह्य में-राग में कहीं मेरा सुख नहीं है; उनमें सुख माना, वह तो भ्रम था; सच्चा सुख मेरे आत्मा में है।

'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें' - ऐसी जिसकी मान्यता है, वह भी देह को ही आत्मा मानता है। अरे मूढ़! शरीर तो जड़ है, उस जड़ में क्या तेरा सुख है? शरीर निरोग हो, तथापि अन्दर मोह के कारण जीव दु:खी हो रहा है। शरीर, वह मैं हूँ - ऐसी जिसकी मान्यता है, वही अनादि का भ्रम / रोग है; वह रोग मिटकर निरोगता कैसे हो? उसकी यह बात है। देह मैं नहीं, मैं तो चैतन्य हूँ, देह की निरोगता से मुझे सुख नहीं अथवा देह

के रोग से मुझे दु:ख नहीं; मैं देह से पार अतीन्द्रिय चैतन्य हूँ – ऐसे चैतन्य का भान करे तो मिथ्यामान्यतारूपी रोग मिटे और सम्यग्दर्शनादि निरोगता प्रगट हो, यही सुख है।

देह, वह मैं – ऐसी मान्यता की गन्ध जीव को बैठ गयी है, इसलिए देह के कार्यों को ही अपना कार्य मानकर अज्ञानी प्रवर्तता है परन्तु चैतन्य की गन्ध (रुचि) अन्दर में बैठाता नहीं। देहादि छेदाये या भेदाये, रहे या जाये परन्तु वह मैं नहीं। शरीर छेदाये या भेदाये, उससे मैं कहीं छेदाता-भेदाता नहीं हूँ; देह के वियोग से मेरा नाश नहीं होता, मैं तो चैतन्यस्वरूप असंयोगी शाश्वत् हूँ – ऐसी भेदज्ञान की भावना से आत्मज्ञान करे तो अविद्या के संस्कार का नाश हो जाता है। जैसे कुएँ के ऊपर का कठोर काला पत्थर भी डोरी से बारम्बार घिसकर उसमें निशान हो जाता है; इसी प्रकार देह से भिन्न चिदानन्द तत्त्व की बारम्बार भावना के अभ्यास से अनादि अविद्या के संस्कार का नाश होकर भेदज्ञान होता है और अपूर्व ज्ञानसंस्कार प्रगट होते हैं।

देह, वही मैं हूँ – ऐसी मिथ्याबुद्धि के कारण, अज्ञानी जीव बारम्बार देह को ही धारण करता है और ज्ञानी को देह से भिन्न चिदानन्द तत्त्व को जानता हुआ, देह को धारण नहीं करता। इस प्रकार बहिरात्मा और अन्तरात्मा के कार्य का भेद बतलाते हैं।

देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनं ॥13॥

देह में ही स्वबुद्धि रखनेवाला बहिरात्मा, स्वयं को बारम्बार शरीर के साथ जोड़कर – नये-नये शरीर धारण करके संसार में भटकता है और अपने आत्मा में ही आत्मबुद्धि रखनेवाला अन्तरात्मा, अपने आत्मा को शरीर से भिन्न कर डालता है, अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है; इस प्रकार बहिरात्मा को शरीरबुद्धि का फल, संसार है और अन्तरात्मा को आत्मबुद्धि का फल, मोक्ष है। जैसे लोगों में ऐसा कहा जाता है कि चुडैल-डाकिन को यदि बुलाओ तो वह चिपटती है और नहीं बुलाओ तो वह चली जाती है। इसी प्रकार यह शरीररूपी चुडैल है, इस शरीर जो अपना मानता है, उसे

ही यह चिपटता है। अर्थात् शरीर, वह मैं हूँ – ऐसी मिथ्याबुद्धि के कारण ही जीव, संसार में नये-नये शरीर धारण करके जन्म-मरण करता है। देह से अपने को भिन्न जानकर, चिदानन्दस्वरूप आत्मा को जो सेवन करता है, उसे मोक्ष होने पर शरीर छूट जाता है; फिर से शर्मजनक देह का संयोग नहीं होता है। जिसने अशरीरी आत्मा को चूककर, शरीर को अपना माना है, वही चार गति में परिभ्रमण करता है परन्तु अशरीरी चैतन्यस्वभाव को पहचानकर जो उसकी आराधना करता है, वह अशरीरी सिद्ध हो जाता है। श्री योगीन्द्रुस्वामी कहते हैं कि –

ध्यान धरे अभ्यन्तरे, देखत जो अशरीर।
मिटे जन्म लज्जा जनक, पिये न जननी क्षीर॥

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी आत्मसिद्धि में कहा है कि

छूटे देहाध्यास तो नहीं करता तू कर्म,
नहीं उनका तू भोगता यही धर्म का मर्म॥

'देह ही मैं हूँ' – यदि ऐसा देहाध्यास छूट जाये, अर्थात् देह से पार मैं चिदानन्दस्वभाव ही हूँ – ऐसा यदि सम्यक्भान हो तो वह आत्मा, देहादिक का या कर्मों का कर्ता नहीं होता तथा उनके फल का भोक्ता भी नहीं होता। वह तो अपने आत्मा को देहादिक से तथा कर्मों से भिन्न जानकर, अपने ज्ञानभाव का ही कर्ता-भोक्ता होता है और यही धर्म है। इसलिए पहले यथार्थ भेदज्ञान करने का उपदेश है।

आत्मा को अनादि काल से अशान्ति क्यों है और शान्ति कैसे प्राप्त हो-समाधि कैसे हो? यह बात चलती है। ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा है, वह शरीर से भिन्न ज्ञाता-दृष्टा है; आत्मा, शरीर का जाननेवाला है परन्तु स्वयं शरीर नहीं है, तथापि अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं ही शरीर हूँ, शरीर मेरा है – ऐसी भ्रमबुद्धि के कारण वह चैतन्य में एकाग्र नहीं होता परन्तु देह की ममता से बारम्बार नये-नये शरीर धारण किया करता है और शरीर के लक्ष्य से दुःखी-अशान्त हो रहा है। उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे जीव! यह शरीर तू नहीं है; तू तो चैतन्यस्वरूपी अरूपी है; देह से भिन्न तेरे स्वरूप को जान तो तुझे शान्ति होगी।

देहबुद्धि के कारण अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं काला, मैं गोरा, मुझे

सर्दी हुई, मुझे गर्मी हुई, मुझे रोग हुआ – इस प्रकार देह की अवस्थाओं को ही आत्मा मानता है। शीत–उष्ण तो शरीर होता है, आत्मा कहीं शीत–उष्ण नहीं होता। आत्मा को तो उसका ज्ञान होता है। वहाँ अपने ज्ञान को देह से भिन्न न जानकर, एकाकार मानकर स्वयं को ही शीत–उष्ण इत्यादि होना मानता है। इस प्रकार जड़–शरीर में ही मूर्छित हो गया है, यह असमाधि है और चैतन्य में सावधानी, वह समाधि है।

– एक ओर चैतन्यमूर्ति आनन्दस्वरूप आत्मा; दूसरी ओर अचेतन जड़–शरीर – ऐसे दो भाग डालकर भेदज्ञान किया है। शरीर और शरीर के साथ के सम्बन्धवाले समस्त परद्रव्य, मेरे आत्मा से बाहर है और चिदानन्दस्वरूप आत्मा, वह एक ही मेरा अन्तरतत्त्व है। इस प्रकार निजस्वरूप को नहीं जाना और शरीर को अपना माना, वहाँ अज्ञानी को बाहर में परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध विस्तृत हुआ और संसार खड़ा हुआ।

इस शरीर को तो 'भवमूर्ति' कहा है। आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, वह आनन्द की मूर्ति है और यह देह तो भव की मूर्ति है। इसलिए जिसे इस शरीर की रुचि है, वह जीव दीर्घ काल तक भवभ्रमण करता है। अरे! परम शुद्ध, भवरहित इस भगवान आत्मा की प्रीति छोड़कर, मूढ़ जीव, जड़ शरीर की प्रीति करके उसमें सुख मान–मानकर जड़ के साथ जुड़ान करते हैं, आत्मा के साथ शत्रुता करके आत्मा से विरुद्ध ऐसे जड़ शरीर के साथ मित्रता (एकताबुद्धि–देहाध्यास) करते हैं, वही भवभ्रमण का मूल है। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा का अस्तित्व चूककर, जिसने देह में ही अपना अस्तित्व माना है, वह जीव, देहाध्यास के कारण अनन्त शरीर धारण करेगा परन्तु—

काया की विसारी माया... स्वरूप में समाये ऐसे...
निर्ग्रन्थ का पन्थ भव अन्त का उपाय है॥

मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा, जानने की क्रिया का ही कर्ता हूँ, शरीर तो जड़ है, वह हिले–चले, तथापि उसमें जानने की क्रिया नहीं है; जानने की क्रिया तो मेरी ही है। इस प्रकार जानने की क्रियास्वरूप अपने आत्मा को देह से भिन्न पहचाने तो देहाध्यास छूट जाये और अल्पकाल में उसे देहरहित सिद्धपद प्रगट हो।

यह मनुष्य अवतार प्राप्त करना अनन्त काल में दुर्लभ है। ऐसा मनुष्य अवतार और उसमें भी उत्तम सत्संग पाकर, अरे जीव! तू विचार तो कर कि 'मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? और मेरा वास्तविकस्वरूप क्या है? किसके साथ मुझे सम्बन्ध है?'

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है, स्वीकृत करूँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिये
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।

(अमूल्य तत्त्वविचार, श्रीमद् राजचन्द्र)

यह देह तो अभी हुआ; आहार-पानी से यह पिण्ड रचा गया; मैं यह नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। मेरा आत्मा कहीं नया नहीं हुआ; शरीर का संयोग नया हुआ है। यह आत्मा पहले (पूर्व भव में) दूसरे शरीर के संयोग में था, वहाँ से उस शरीर को छोड़कर यहाँ आया। इस प्रकार आत्मा तो त्रिकाल टिकनेवाला तत्त्व है और देह तो क्षणिक संयोगी है। मेरा स्वरूप तो ज्ञान आनन्दस्वरूप है; शरीर, इन्द्रियाँ मेरा स्वरूप नहीं है, वह तो जड़ का रूप है। उन शरीरादिक के साथ मुझे वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके साथ का सम्बन्ध तोड़कर ज्ञानानन्दस्वरूप के साथ ही मुझे सम्बन्ध जोड़ना योग्य है। मेरे चिदानन्द तत्त्व के अतिरिक्त जगत् के किसी भी पदार्थ के साथ मुझे एकता का सम्बन्ध कभी भी नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रकार से विचार करके अन्तर्मुख चित्त से ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा का निर्णय करना और देहादिक को अपने से बाह्य / भिन्न जानना; यह सिद्धान्त का सार है। इस प्रकार ज्ञानानन्दस्वरूप की पहिचान करके, उसमें एकाग्रता द्वारा परमात्मा होने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह देह तो जड़ है, इस देह में से कहीं परमात्मदशा नहीं आती है; परमात्मदशा तो आत्मा में से आती है, देह से भिन्न ऐसे आत्मा को जानकर, उसमें एकाग्रता द्वारा परमात्मदशा होती है; इसलिए देह में आत्मबुद्धि छोड़कर, अन्तर के आत्मस्वरूप की श्रद्धा से अन्तरात्मा होकर परमात्मा होने का उपाय करना योग्य है। *क्रमशः*

[आत्मभावना (गुजराती) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन]

एक शिक्षाप्रद कथा मङ्गलायतन संस्कार वाटिका

सत्मार्ग का प्रेरक ही सच्चा मित्र

(सगर चक्रवर्ती का वैराग्य)

जम्बूद्वीप के प्रसिद्ध तथा सुन्दर विदेहक्षेत्र की पूर्व दिशा में सीता नदी के पश्चिम की तरफ वत्सकावती नाम का एक देश है। उसकी राजधानी पृथिवी नगर के राजा का नाम जयसेन था। जयसेन की रानी जयसेना थी। उनके रतिषेण और घृतिषेण नामक दो पुत्र थे। दोनों भाई सुन्दर और गुणवान थे। रतिषेण अचानक मर गया। राजा जयसेन, पुत्र के शोक से दु:खी होकर घृतिषेण को राज्य देकर मारुत तथा मिथुन राजा के साथ यशोधर मुनि के समीप दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की और अन्त में संन्यासपूर्वक शरीर का त्याग करके स्वर्ग में महाबल नाम का देव हुए। उनके साथ दीक्षित मारुत भी उसी स्वर्ग में मणिकेतु नाम का देव हुआ। एक दिन दोनों ने धर्म-प्रेमवश प्रतिज्ञा की कि हम दोनों में से जो पहले मनुष्य जन्म धारण करेगा, उसको स्वर्ग में रहनेवाला देव जाकर सम्बोधित करेगा और संसार से उदासीन करके जिनदीक्षा के सन्मुख करेगा।

महाबल की आयु बाईस सागर की थी। वह इच्छित स्वर्गसुख भोगकर आयु के अन्त में पुण्य के प्रभाव से अयोध्या के राजा समुद्रविजय की रानी सुरक्ता के सगर नाम का पुत्र हुआ। उसकी उम्र सत्तर लाख पूर्व वर्षों की थी। उसके सुवर्ण समान चमकते शरीर की ऊँचाई साढ़े चार सौ धनुष अर्थात् १५७५ हाथ की थी। उसकी अनुपम सुन्दरता देखकर सभी प्रसन्न होते थे। सगर ने राज्यश्री प्राप्त करके पृथ्वी के छह खण्ड जीतकर अपने बाहुबल से दूसरे चक्रवर्ती का मान प्राप्त किया।

❖ ❖ ❖

एक बार वन में-सिद्धवन में चतुर्मुख मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। स्वर्ग के देव, विद्याधर तथा राजा-महाराजा उनकी पूजा के लिये आये। उस समय चक्रवर्ती सगर भी भगवान के दर्शन के लिए गया था।

सगर को आया देखकर मणिकेतु ने कहा - हे राज राजेश्वर! क्या अच्युत स्वर्ग की बात याद है? जहाँ हम दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि 'हम दोनों में से जो पहले मनुष्य जन्म लेगा, स्वर्ग का देव उसे जाकर समझायेगा और संसार से उदासीन करके संयम के सन्मुख करेगा।' तुमने बहुत समय तक राज्यसुख भोगा है, अब तुमको इसे छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। विषय-भोग दु:ख का और संसार-परिभ्रमण का कारण है। तुम स्वयं बुद्धिमान हो, मैं विशेष क्या समझाऊँ? मैंने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये तुमसे प्रार्थना की है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम इन क्षणभंगुर विषयों से विरक्त होकर, जिनभगवान का परम पवित्र तप मार्ग स्वीकार करोगे।

मणिकेतु के इस उपदेश का पुत्र मोही सगर पर कुछ असर नहीं हुआ। मणिकेतु ने देखा कि यह सांसारिक मायाजाल में इतना फँसा है कि इसको विषय भोगों से वंचित करना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। आगे देखेंगे। - ऐसा विचार करके मणिकेतु अपने स्थान पर चला गया क्योंकि काललब्धि बिना कल्याण किस प्रकार हो सकता है?

❖ ❖ ❖

थोड़े समय बाद फिर मणिकेतु के मन में विचार आया कि अब दूसरे प्रयत्न से सगर को तपस्या के सन्मुख करना चाहिए। अत: वह चारणमुनि का वेष धारण करके सगर के जिनमन्दिर में आया और भगवान के दर्शन करके वहीं ठहर गया। उसकी छोटी उम्र और सुन्दरता देखकर सगर को बहुत आश्चर्य हुआ।

सगर ने पूछा कि मुनिराज! आपने इस छोटी उम्र में अभी संसार का

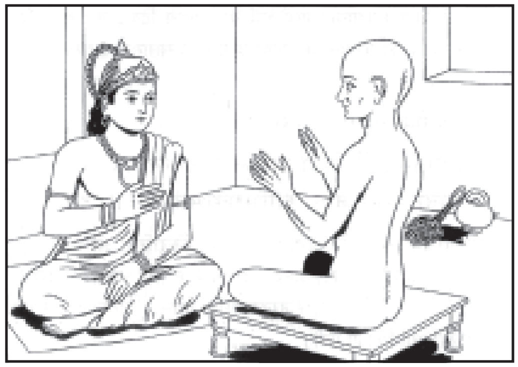

कोई सुख नहीं देखा तो ऐसे कठिन योग को किस कारण धारण किया है? मुझे तो आपको योगी देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा है।

मुनिवेष धारक मणिकेतु ने जवाब दिया - हे राजन्! मेरा विश्वास है कि संसार में सुख है ही नहीं; मैं जहाँ देखता हूँ, वहाँ दुःख और अशान्ति ही नजर आती है।

यह जवानी पलभर में बिजली की तरह चमक कर अस्त हो जायेगी। ये विषय भोग सर्प के समान भयंकर हैं। संसाररूपी अथाह समुद्र नाना प्रकार के दुःखरूपी जलचर जीवों से भरा हुआ है, जिसको पार करना जीवों के लिये महान दुष्कर है; अतः पुण्योदय से जो यह मुक्ति साधना के योग्य मनुष्य शरीर मिला है, उसे प्राप्त करके भी इस आत्मा को इस अथाह भव समुद्र में डूब जाने दें या जिनेन्द्र भगवान कथित तपरूपी नाव द्वारा इसे भवसागर से पार करने का यत्न करें? मैं तो इस असार संसार से पार होने का प्रयत्न करना ही मेरा कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्य देह मिलने का फल समझता हूँ; और तुम्हें भी सही सलाह देता हूँ। इस नाशवान माया ममता को छोड़कर, कभी नहीं नष्ट होने योग्य मोक्षलक्ष्मी के प्राप्ति का यत्न करो।

मणिकेतु ने बहुत दृष्टान्तों से सगर को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु सब जानते होने पर भी पुत्र-मोहवश वह संसार का परित्याग नहीं कर सका। मणिकेतु को बहुत दुःख हुआ कि सगर को अभी भी संसार की तुच्छता भाषित नहीं होती, उल्टे यह इसी में फँसता जा रहा है। लाचार होकर वह वापस स्वर्ग में चला गया।

❖ ❖ ❖

एक दिन चक्रवर्ती सगर राज्यसभा में सिंहासन पर बैठा था। उस समय

उसके पुत्रों ने आकर प्रार्थना करते हुए कहा – पिताजी! आज तक आपकी आज्ञानुसार हमने सब भोग भोगे परन्तु अब आप हमको कुछ कार्य प्रदान कीजिये।

सगर ने उनके आग्रह को देखकर कहा – हे पुत्रों! यद्यपि मेरी इच्छा नहीं है कि तुमको कोई कष्ट हो, परन्तु तुम्हारी इच्छा है; अतः एक काम बताता हूँ, वह यह कि श्रीमान् भरत सम्राट ने कैलाशपर्वत पर चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं, वे सब सुवर्णमयी है, उनमें अपार धन खर्च हुआ है। उनमें जो भगवान की प्रतिमाएँ हैं, उनकी रक्षा करना बहुत आवश्यक है; अतः तुम कैलाश के चारों तरफ एक गहरी खाई खोदकर उसमें गंगा का पानी भर दो, जिससे कोई भी मन्दिरों को क्षति नहीं पहुँचा सके।

सगर के पुत्र, अपने पिता की आज्ञा सुनकर प्रसन्न हुए और उन्हें नमस्कार करके अत्यन्त उत्साहपूर्वक कार्य के लिये निकल पड़े। कैलाश पर पहुँचकर कितने ही वर्षों के कठिन परिश्रम से और चक्रवर्ती के दण्डरत्न की सहायता से उन्होंने अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

❖ ❖ ❖

जिस समय सगर के साठ हजार पुत्र खाई खोदकर गंगा का प्रवाह लाने के लिये हिमवानपर्वत पर गये तथा दण्डरत्न द्वारा पर्वत को तोड़ने के लिये उस पर चोट की, उस समय मणिकेतु ने महाविषधर सर्प का रूप धारण किया, जिसकी हुँकारमात्र से मीलों तक के जीव-जन्तु मरकर भस्म हो जाए – ऐसी जहरीली हवा बिखेरी। देखते ही देखते सभी पुत्र मूर्छित हो गये – मरे हुए के समान हो गये।

सत्पुरुष अन्य की भलाई करने के लिये उसका ही सांसारिक अहित करके उसे ही आत्मिक हित में प्रेरित करते हैं।

मन्त्रियों को राजपुत्रों के मरने के समाचार ज्ञात हुए परन्तु उन्होंने राजा से बात नहीं की क्योंकि राजा, पुत्रों के मरण के महान दु:ख को सहन नहीं कर सकता था। तब मणिकेतु स्वयं एक ब्राह्मण का रूप धारण करके सगर के समीप आया और दु:ख के साथ रोते-रोते बोला - राजाधिराज! आप जैसे न्यायप्रिय राजा के होने पर भी मुझे अनाथ होना पड़ा। मेरी आँखों का एकमात्र तारा, पापी लोग बलजोरी मुझसे छीनकर ले गये; मुझे घर-घर का भिखारी बना दिया - इससे बड़ा दु:ख क्या होगा ? प्रभु! आज दुष्टों ने मुझे बे-मौत मारा है। आप मेरी रक्षा करो।

सगर ने उसे आश्वासन देकर कहा कि हे ब्राह्मणदेव! डरो मत, बात क्या है - मुझसे कहो; मैं तुम्हारा दु:ख दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

ब्राह्मण ने कहा - महाराज! क्या कहूँ? कहते हुए मेरा हृदय फटा जाता है - ऐसा कहकर वह रोने लगा।

ब्राह्मण की करुणदशा देखकर चक्रवर्ती को दु:ख हुआ। उसके द्वारा आग्रह किये जाने पर ब्राह्मण रूपधारी मणिकेतु ने कहा - अच्छा! तो मेरी दु:ख कहानी सुनो! मेरा एक पुत्र था, जो मुझे कमाकर खिलाता-पिलाता था, परन्तु आज मेरा भाग्य फूट गया। उसे कालरूपी लुटेरा बलजोरी से मेरे हाथों से छीनकर ले गया। मैं बहुत रोया, गिड़गिड़ाया, दया की भीख माँगी, परन्तु उस पापी ने मेरी और आँख उठाकर देखा भी नहीं। आप मेरे पुत्र को उस पापी के पास से छुड़ाकर ले आओ; अन्यथा तो मेरे प्राण निकल जायेंगे।

सगर को काल लुटेरे का नाम सुनकर हँसी आई। उसने कहा - ब्राह्मणदेव! तुम बहुत भोले हो। भला जिसको काल ले जाता है, क्या वह पुन: जीवित आ सकता है ? काल तो अपना कार्य करता जाता है। चाहे कोई वृद्ध हो, जवान हो, बालक हो - उसका तो सबके प्रति समान भाव है। तुम तो अपने पुत्र के लिये रोते हो, परन्तु वह शीघ्र ही तुम्हें भी ले जायेगा। यदि तुम उससे अपनी रक्षा करना चाहते हो तो मुनि हो जाओ।

हाँ, महाराज! एक आवश्यक बात करना तो मैं भूल ही गया; क्षमा

करें। जब मैं रास्ते में आ रहा था तो लोग आपस में बातें कर रहे थे कि महाराज के पुत्र कैलाशपर्वत की रक्षा के लिए खाई खोदने गये थे, वे सब एक साथ सर्प के विष से मर गये हैं।

ब्राह्मण का यह वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि सगर मूर्छित होकर नीचे गिर पड़ा। ऐसे भयंकर समाचार सुनकर किसको मूर्छा नहीं आयेगी ? जब उपचारों से सगर को होश में लाया गया, तब मौका देखकर ब्राह्मण वेषधारी मणिकेतु ने संसार की ऐसी स्थिति बताकर बहुत उपदेश दिया। इस समय उसका प्रयत्न सफल हुआ। सगर ने भगीरथ को राज्य देकर दृढ़धर्म केवली के समीप जिनदीक्षा अंगीकार कर ली; जो कि संसारचक्र से छुड़ानेवाली थी।

❖ ❖ ❖

सगर के दीक्षा लेने के बाद मणिकेतु कैलाशपर्वत पर पहुँचा और सगर के पुत्रों को मायामयी मूर्च्छा से सचेत करके बोला – सगर पुत्रों! तुम्हारी मृत्यु के समाचार सुनकर तुम्हारे पिता को अत्यन्त दु:ख हुआ और वे संसार को असार समझकर साधु हो गये हैं। महाराज के दीक्षा लेने के बाद मैं तुमको खोजने निकला हूँ। अच्छा हुआ जो तुम मुझे मिल गये। अब तुम शीघ्र राजधानी में चलो।

अपने पिता के दीक्षित हो जाने की बात सुनकर सगरपुत्रों ने मणिकेतु से कहा – हे ब्रह्म! पिताजी राजपाट छोड़कर मुनि हो गये तो क्या हम आराम भोगेंगे ? पूज्य पिताजी ने जिस मार्ग को उत्तम जानकर ग्रहण किया है, वही मार्ग हमारे लिये भी अनुकरणीय है। आप कृपा करके भाई भगीरथ से कहना कि वह हमारे लिये चिन्ता नहीं करें। ऐसा ब्राह्मण से कहकर वे सभी भाई भी दृढ़धर्म केवली भगवान के समवसरण में आये और पिता की तरह दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

❖ ❖ ❖

भगीरथ को भी भाईयों का वृतान्त सुनकर वैराग्य हो गया। उसकी इच्छा भी योगी बनने की हुई परन्तु उस पर राज्य का भार होने से वह दीक्षा नहीं ले सका। उसने मुनियों से जिनधर्म का उपदेश सुनकर श्रावक के व्रत धारण किये। जब मणिकेतु के ये सब कार्य सफल हो गये, तब वह प्रकट हुआ और उन नवदीक्षित मुनियों को नमस्कार करके बोला – हे मुनिवर! मैंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। आप लोग जैनधर्म के सच्चे तत्त्व के ज्ञानी हो; अतः इस सेवक को क्षमा करो।

तत्पश्चात् मणिकेतु ने पूर्व की घटना कह सुनाई। जिसे सुनकर सबको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि देवराज! इसमें तुम्हारा क्या अपराध है, जिसके लिये तुम्हें क्षमा करें। तुमने तो हमारा महान उपकार किया है, जिसके लिये हम तुम्हारे ऋणी हैं। मित्र के सम्बन्ध में तुमने जो कार्य किया है, उसे करने के लिये तुम्हारे अलावा अन्य कौन समर्थ है, अर्थात् कोई नहीं। तुम जिनेन्द्र भगवान के सच्चे भक्त हो। सगर पुत्रों का ऐसा सन्तोषप्रद उत्तर सुनकर मणिकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और उनको नमस्कार करके स्वर्ग चला गया। वह मुनि संघ भी विहार करते-करते तीर्थराज सम्मेदशिखर आया। वहाँ कठिन तपस्या करके उन मुनि भगवन्तों ने निर्वाण प्राप्त किया।

जब भगीरथ को अपने भाईयों को मोक्षमगन के समाचार ज्ञात हुए तो उसे भी वैराग्य हो गया। उसने अपने वरदत्त पुत्र को राज्य सौंपकर कैलाशपर्वत पर जाकर शिवगुप्त मुनिराज के समीप जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर भगीरथ ने गंगा तट पर कभी प्रतिमा योग से, कभी आतापन योग से अलग-अलग प्रकार के आसनों द्वारा घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं ने क्षीरसमुद्र के जल से भगीरथ के चरणों का अभिषेक किया। उस अभिषेक के जल का प्रवाह गंगा में गया, तभी से गंगा तीर्थरूप प्रसिद्ध हुई और उसमें स्नान करना पुण्य माना जाने लगा। अन्त में तप बल से कर्मों का नाश करके भगीरथ ने जन्म-जरा-मरण से रहित मोक्ष प्राप्त किया। *(-उत्तर पुराण में से)*

दीपावली का मङ्गल सन्देश

(1) जिनमन्दिर में भगवान महावीर, स्वसन्मुखता का इशारामात्र हैं, इसके बदले भगवान महावीर हमारा भला करेंगे — ऐसी मान्यतावालों की बुद्धि का दिवाला निकल गया है।

(2) जिसे भगवान के दर्शन के निमित्तरूप विशेष स्थिरता होती है, वह धन्य है, उसने दिवाली मानी।

(3) भगवान के दर्शन से स्व-पर का विवेक उत्पन्न होता है, तब विभावभाव दूर होकर, स्वभावभाव, पर्याय में प्रगट हो जाता है।

(4) जिनप्रतिमा, जिन-सारखी कहा है। भगवान के निर्वाण से क्रमबद्धादि सब सिद्धान्त हल हो जाते हैं।

जिन भगवान के केवलज्ञान को माने, उधर वस्तुस्वरूप को माने, बेड़ा पार हो गया।

जैनकुल, मोक्ष जाने का दरवाजा खुला है। — जय गुरुदेव!

- पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

मङ्गल दैनन्दिनी, दिनांक 13-11-1993, पृष्ठ 9 से साभार

समयसार व्याख्यानमाला का विशेष आयोजन

दिनांक 21 जनवरी 2013 से 30 जनवरी 2013 तक

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन में पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी सोनगढ़ द्वारा वार्षिक उत्सव से पूर्व 21 से 30 जनवरी 2013 तक समयसार पर विशेष व्याख्यान आयोजित किये गये हैं। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन भी समयसार ग्रन्थ पर रहेंगे। साथ ही स्थानीय विद्वानों का भी लाभ प्राप्त होगा। इस अवसर पर आत्मार्थी बन्धु सादर आमन्त्रित हैं। कृपया पधारने की सूचना अवश्य प्रेषित करने का अनुरोध है।

<u>समाचार-सार</u>

मङ्गलायतन अमृत महोत्सव की तैयारियां जोरों पर

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन की स्थापना की दसवीं वार्षिक तिथि, दिनांक 31 जनवरी से 06 फरवरी 2013 के उपलक्ष्य में आयोजित मङ्गलायतन अमृत महोत्सव की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही है। इस कार्यक्रम को भव्यरूप से आयोजित करने के उद्देश्य से 2003 में आयोजित पञ्च कल्याणक के सभी पात्रों को आमन्त्रित किया गया है। इसके साथ-साथ मुमुक्षु जगत के ख्याति प्राप्त विद्वानों के पधारने की स्वीकृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। आवास एवं भोजनव्यवस्था हेतु कमेटियों ने अपनी तैयारी प्रारम्भ कर दी है। हमारा समस्त साधर्मीजनों से विनम्र निवेदन है कि इस अवसर पर अवश्य तीर्थधाम मङ्गलायतन पधारकर इस कार्यक्रम को भव्यता प्रदान करने के साथ-साथ तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ प्राप्त करें।

इस अवसर पर जैनदर्शन के आधारभूत अनेक विषयों पर तात्त्विक गोष्ठियों का लाभ विशेषरूप से प्राप्त होगा। कृपया अभी से उक्त तिथियों पर अपना आगमन सुनिश्चित करके हमें सूचित करने का कष्ट करें। जिससे आपके आवास आदि की समुचित व्यवस्था करने में हमें सुविधा हो।

भीलवाड़ा पञ्च कल्याणक की तैयारियाँ अन्तिम चरण में

भीलवाड़ा : राजस्थान की सुप्रसिद्ध वस्त्रनगरी भीलवाड़ा में नवनिर्मित श्री सीमन्धर जिनालय का भव्य पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, दिनांक 24 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2012 तक तीर्थधाम मङ्गलायतन एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के संयुक्त तत्त्वावधान में सम्पन्न होने जा रहा है। इस पञ्च कल्याणक को धर्म प्रभावक एवं भव्यरूप प्रदान करने के उद्देश्य से चल रही तैयारियाँ अब अन्तिम चरण में हैं। इस महामहोत्सव में देश के ख्यातिप्राप्त आध्यात्मिक विद्वानों का भरपूर लाभ प्राप्त होगा। साथ ही मुमुक्षु समाज के अनेक श्रेष्ठीगण भी इस महोत्सव में अपनी उपस्थिति दर्ज करायेंगे। समागत अतिथियों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था, कार्यक्रम स्थल के नजदीक की गयी होने से किसी भी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा। आप सबसे अनुरोध है कि मेवाड़ की धरा पर होनेवाले इस पञ्च कल्याणक में अधिक से अधिक संख्या में पधारकर जिनशासन की प्रभावना में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करें।

निवेदक - पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा कमेटी, भीलवाड़ा।

आत्मधर्म हिन्दी के प्राचीन अंकों की आवश्यकता

पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्म वर्ष 01 से 35 तक कम्प्यूटराईजेशन द्वारा इन्टरनेट पर उपलब्ध कराये जा रहे हैं तदर्थ हमें हिन्दी आत्मधर्म वर्ष 2, 3, एवं 4 की फाईल की आवश्यकता है। जिस किसी मुमुक्षुभाई के पास उपलब्ध हो, कृपया निम्न पते पर अविलम्ब भेजने का अनुरोध है। कम्प्यूटराईजेशन कार्य पूर्ण होने पर फाईलें वापस भिजवा दी जायेंगी।

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216, हाथरस

मोबा. : 09897234019, 09928392619

वैराग्य समाचार

बेलगाँव (कर्नाटक) : श्रीमती कुसुम पाटील धर्मपत्नी एम. वी. पाटील का देहपरिवर्तन शान्त परिणामों से हुआ है। श्री एम.वी. पाटील ने आचार्य कुन्दकुन्ददेव के पञ्च परमागमों का कन्नड़ भाषा में रूपान्तरण किया था, साथ ही आत्मधर्म कन्नड़ मासिक का भी अनेक वर्षों तक कार्य किया था। आपके इन कार्यों में स्वर्गीय श्रीमती कुसुम पाटील का भरपूर सहयोग रहता था।

नागपुर : श्रीमान् सुन्दरलाल जैन मामाजी का 95 वर्ष की आयु में शान्त परिणामों से देहपरिवर्तन हुआ है। विदित हो कि आप डॉ. राकेश जैन शास्त्री एवं श्री अशोककुमार जैन के मामाजी थे।

कोलारस : चौधरी रतनचन्द जैन का शान्त परिणामों से देहपरिवर्तन हुआ है।

हिंगोली (महा.) : जिनधर्म प्रेमी श्रीमती रेणुकादास दोडल का क्षमावाणी पर्व के दिन अत्यन्त समताभावपूर्वक देहपरिवर्तन हुआ है। विदित हो कि आप सुप्रसिद्ध उद्योगपति होने के साथ-साथ आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न एवं जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिये सदैव समर्पित रही हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार, इष्टवियोग की इस विषम परिस्थिति में आपके परिजनों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा के अभ्युदय की मंगल कामना करता है।